ध्यान

भाग - २

जीवन की दोनों दशाओं —

विस्मरण	अथवा	स्मरण
कुसंगति	अथवा	संगति
मनमुखता	अथवा	गुरमुखता
दुख	अथवा	सुख
नरक	अथवा	स्वर्ग

के बीच महत्त्वपूर्ण नुक्ता (crucial point) हमारी **चेतनता अथवा ध्यान (consciousness) का ही है।**

यदि हमारा **'ध्यान'** अथवा **चेतनता** (consciousness) 'मायिकी भ्रम' से **संगति** करती है, तो हम 'मनमुख' हो जाते हैं तथा **ईश्वरीय मंडल को 'भूल' जाते हैं** — परन्तु यदि हमारा **'ध्यान'** अथवा चेतनता आत्मिक संगति करती है, तब हमारे अन्दर दैवीय चेतनता (Divine consciousness) दृढ़ होती जाती है।

साध संगति द्वारा प्राप्त दिव्य चेतनता (Divine consciousness) अथवा 'विवेक बुद्धि' ने ही मानसिक या आत्मिक जीवन अथवा 'अच्छी' या 'बुरी' संगति का —

निर्णय करना है
दिशा देनी है
चिंतन करना है
अभ्यास करना है
उद्यम करना है।

सुभ चिंतन गोबिंद रमण निरमल साधू संग ॥ (पृ. ४५९)

सतसंगति मिलि बिबेक बुधि होई ।। (पृ. ४८१)

साधसगि नानक बुधि पाई हरि कीरतनु आधारो ।। (पृ. ४९८)

दुरमति मैलु गई सभ नीकलि

सतसंगति मिलि बुधि पाइ ।। (पृ. ८८१)

अन्तर-आत्मा में **'ज्योति' अथवा 'शबद' की चेतनता द्वारा** प्राप्त **ज्ञान** (spiritual knowledge) को **'अनुभव'** (intuition) कहा जाता है।

'अनुभव' (intuition) हमें अनन्त **आत्मिक मंडल की सूझ तथा ज्ञान प्रदान करता है ।**

दिमागी ज्ञान हमें सीमित **'मायिकी मंडल' की सूझ या ज्ञान देता है।**

दोनों प्रकार के **'ज्ञान'** –

अनुभवी आत्मिक ज्ञान

दिमागी मायिकी ज्ञान

के बीच हमारी **चेतनता अथवा 'ध्यान' की डोर** ही कार्य करती है ।

यदि हमारी चेतनता की डोरी या 'ध्यान' दिव्य संगति से जुड़ा हो अथवा आत्म परायण हो तब उसे 'सत्संगत' कहा जाता है, जिसके द्वारा 'चेतनता' को दिव्य रंग चढ़ता जाता है ।

दूसरी ओर यदि हमारी **चेतनता** की डोरी या **ध्यान** मायिकी भ्रम में गलतान हो, तब उसे 'कुसंगति' अथवा तुच्छ संगति कहा जाता है – जिससे जीव मनमुख, मायाधारी तथा साकत बन जाते हैं तथा **आत्मिक मंडल से टूट जाते हैं ।**

इन दोनों अवस्थाओं के बीच जीव की –

'चेतनता' अथवा **'ध्यान'**

तथा

'मेल' अथवा **'संगति'**

का ही संबंध है ।

प्रत्येक कर्म (action) की पूर्ण सफलता के लिए **चेतनता अथवा ध्यान** (attention) अनिवार्य है।

इकु मनु इकु वरतदा जितु लगै सो थाइ पाइ ।। (पृ. ३०३)

इसी प्रकार 'संग' या 'संगति' करने के पूर्ण लाभ, परस्पर मिलाप या 'आदान - प्रदान' के लिए भी **'चेतनता' अथवा 'ध्यान' अति आवश्यक है।**

जब हम किसी बात या वस्तु की ओर **ध्यान** देते हैं, तब हमारे मन का उससे सम्बन्ध या मेल (communion) हो जाता है तथा हम उससे **'आदान-प्रदान' अथवा उसका अच्छा-बुरा प्रभाव लेते-देते हैं ।** जिस वस्तु या बात की ओर हमारी **रुचि** ना हो — उसमें हमारा **ध्यान** नहीं धँसता तथा हम पर उसका नाम मात्र प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में उससे मेल, संगति, साझेदारी अथवा आदान-प्रदान नहीं होता ।

कुछ उदाहरणों द्वारा इस तथ्य को दर्शाया जाता है —

घरों में रेडियो (radio) या टेप रिकारडर (tape recorder) द्वारा कीर्तन या पाठ हो रहा है, परन्तु घर के मैम्बर अपने घरेलू मामलों में गलतान हैं या बातचीत में मस्त हैं ।

इसी प्रकार जब हम स्वयं पाठ या सिमरन करते हैं, तब हमारी चेतनता अन्य **'अनेक चिंतन'** में लगी रहती है, जिस कारण हमारा ध्यान गुरबाणी में नहीं लगता।

आम संगत की भी यही शिकायत है कि गुरबाणी तथा सिमरन में मन नहीं टिकता ।

जब हमारी **चेतनता या 'ध्यान'** गुरबाणी अथवा सिमरन की ओर न हो, तब हम **गुरबाणी की संगति नहीं कर रहे होते** । जिस कारण हमारा गुरबाणी के **आन्तरिक आत्मिक भावनाओं से 'संगति' या 'मेल' नहीं होता** तथा गुरबाणी से हमारे मन की **साझेदारी नहीं होती**। इस प्रकार

उच्च -पवित्र ईश्वरीय गुरबाणी की 'संगति' नहीं होती तथा **गुरबाणी की 'पारस-कला' से हम वचित रहते हैं।**

पड़ीऐ गुनीऐ नामु सभु सुनीऐ अनभउ भाउ न दरसै ।।

लोहा कंचनु हिरन होइ कैसे जउ पारसहि न परसै ।।(पृ.९७३)

दूसरे शब्दों में हम **'चेतनता' अथवा 'ध्यान' के बिना** जो कुछ भी कर्म-धर्म करते हैं – सब **'बे ध्यान' 'गैर हाजिरी' में ही करते हैं ।** इसलिए हम साध संगति या सत संगत से **पूर्ण लाभ नहीं लेते तथा गुरबाणी के पाठ, कीर्तन व सिमरन के आत्मिक लाभ से भी वचित रहते हैं ।**

यही कारण है कि पुरातन काल की अपेक्षा आज कल बहुत अधिक–

धर्म

धर्म-ग्रन्थ

धर्म मन्दिर

धर्म प्रचार

सत्संग-समागम

पाठ

पूजा

कीर्तन

जप

तप

कर्म-क्रिया

के **बावजूद भी** हमारी मानसिक तथा आत्मिक अवस्था में **परिवर्तन ही नहीं आता** बल्कि हमारी **मानसिक शख्सीयत गिरती जा रही है ।**

पडित पड़हि सादु न पावहि ।।
दूजै भाइ माइआ मनु भरमावहि ।। (पृ. ११६)

रहत अवर कछु अवर कमावत ।।
मनि नही प्रीति मुखहु गंढ लावत ।। (पृ. २६९)

पड़े सुने किआ होई ।।
जउ सहज न मिलिओ सोई ।। (पृ. ६५५)

ह्विदै कपटु मुख गिआनी ।।
झूठै कहा बिलोवसि पानी ।। (पृ. ६५६)

अखी त मीटहि नाक पकड़हि ठगण कउ ससारु ।। (पृ. ६६२)

चेतनता अथवा ध्यान के बिना हमारा जीवन 'निर्जीव' सांसारिक पदार्थों (matter) जैसा ही है । इसलिए **जीवों का परस्पर सूक्ष्म मानसिक तथा आत्मिक स्तर पर मेल-मिलाप, संगति, साझेदारी तथा आदान-प्रदान नहीं हो सकता ।**

मिलिऐ मिलिआ ना मिलै मिलै मिलिआ जे होइ ।।
अंतर आतमै जो मिलै मिलिआ कहीऐ रे सोइ ।। (पृ. ७९१)

जो दिलि मिलिआ सु मिलि रहिआ मिलिआ कहीऐ सोई ।।
जे बहुतेरा लोचीऐ बाती मेलु न होई ।। (पृ. ७२५)

मनुष्य तथा जानवरों में इसी **'चेतनता' का ही अन्तर है** । मनुष्य में यह चेतनता (consciousness) अति तीक्ष्ण,तीव्र, सूक्ष्म भावनाओं (subtle feelings) वाली होती है । जिस कारण यह उच्च पवित्र **आत्मिक प्रेम-भावनाओं को ग्रहण करके रंग-रस अनुभव कर सकते हैं** – परन्तु जानवरों में यह **'चेतना'** मोटी-स्थूल होती है, व सूक्ष्म आत्मिक भावनाओं को ग्रहण नहीं कर सकती ।

हमारी रुचि (interest) अनुसार मन का **'ध्यान'** आकर्षित होता

है । जन्म-जन्मान्तरों से हमारा मन ईश्वरीय मंडल से **टूटा हुआ है तथा मायिकी मंडल में गलतान हो कर सूक्ष्म प्रेम भावनाओं को ग्रहण करने में असमर्थ हो चुका है ।**

दूसरे शब्दों में **दिव्य चेतनता के बिना हमारी चेतना जानवरों जैसी स्थूल हो चुकी है ।**

जो न सुनहि जसु परमानंदा ।।
पसु परंवी त्रिगद जोनि ते मंदा ।। (पृ १८८)

करतूति पसू की मानस जाति ।। (पृ २६७)

बिनु संगती सभि ऐसे रहहि जैसे पसु ढोर ।। (पृ. ४२७)

जिवहा इंद्री सादि लुोभाना ।।
पसू भए नही मिटै नीसाना ।। (पृ ९०३)

अम्रितु छोडि महा बिखु पीवै माइआ का देवाना ।।
किरतु न मिटई हुकमु न बूझै पसूआ माहि समाना ।। (पृ १०१३)

साधसंगति कबहू नही कीनी रचिओ धंधै झूठ ।।
सुआन सूकर बाइस जिवै भटकतु चालिओ ऊठि ।। (पृ. ११०५)

मनमुखि अंधुले गुरमति न भाई ।।
पसू भए अभिमानु न जाई ।। (पृ. ११९०)

मनमुख विणु नावै कूड़िआर फिरहि बेतालिआ ।।
पसू माणस चमि पलेटे अंदरहु कालिआ ।। (पृ. १२८४)

हमारी 'पशु वृति' या **तुच्छ 'चेतना' को बदलने या उच्च-उत्तम बनाने** तथा **'आत्म-परायण'** करने के लिए – गुरबाणी में जो एक मात्र साधन अथवा युक्ति बतलायी गयी है, वह है –

'सत संगत' अथवा **'साध संगत'** ।

साधू कै सगि पाप पलाइन ।।
साधसगि अम्रित गुन गाइन ।। (पृ. २७१)

जो जो जपै तिस की गति होइ ।।
साधसगि पावै जनु कोइ ।।
करि किरपा अंतरि उर धारै ।।
पसु प्रेत मुघद पाथर कउ तारै ।। (पृ. २७४)

करि करि हारिओ अनिक बहु भाती छोडहि कतहूं नाही ।।
एक बात सुनि ताकी ओटा साधसगि मिटि जाही ।। (पृ. २०६)

ऊठत बैठत हरि भजहु साधू सगि परीति ।।
नानक दुरमति छुटि गई पारब्रहम बसे चीति ।। (पृ. २९७)

आन उपाउ न कोऊ सूझै हरि दासा सरणी परि रहा ।। (पृ. १२०३)

जिउ छुहि पारस मनूर भए कंचन तिउ पतित जन
मिलि संगती सुध होवत गुरमती सुध हाधो ।। (पृ. १२९७)

गुरमुखि सुख फलु साध संगु पसु परेत पतित निसतारे ।
(वा. भा. गु. १६@७)

किसी ख्याल को **एक नुक्ते पर एकाग्र करने को 'ध्यान' अथवा 'सुरति-वृत्ति' कहा जाता है ।**

हमारी मायिकी तथा आत्मिक उन्नति अथवा सफलता के लिए **ध्यान अति आवश्यक है।** जितना गहरा एक-सुई, एकाग्र, तीक्षण ध्यान किसी कार्य में लगायेगें उतना ही वह कार्य सुन्दर, सफल तथा लाभवन्त होगा ।

'ध्यान' दिये बिना हमारी कोई योजना, सोच-विचार तथा कार्य **पूर्ण नहीं हो सकता ।**

ऊपरी मन से किये कार्य –

अधूरे

गलत

लाभ हीन

हानिकारक

दुखदायी

होते हैं ।

इसी प्रकार **'ध्यान' के बिना** धार्मिक पाठ, पूजा तथा कर्म-क्रिया भी –

फोकट

रस हीन

भावना हीन

लाभ हीन

मुर्दा साधन

ही बन कर रह जाते हैं।

सुलतानपुर में गुरू नानक साहिब जी का काजियों की बे ध्यान नमाज में सम्मिलित न होना इसी बात का सूचक है कि **'ध्यान' के बिना हमारे धार्मिक कर्म-क्रिया भी निष्फल हैं –**

जिन कउ प्रीति रिदै हरि नाही तिन कूरे गाढन गाढे ।। (पृ १७१)

जो दूजै भाइ साकत कामना अरथि दुरगंध सरेवदे
सो निहफल सभु अगिआनु ।।
जिसनो परतीति होवै तिस का गाविआ थाइ पवै
सो पावै दरगह मानु ।।
जो बिनु परतीती कपटी कूड़ी कूड़ी अरवी मीटदे
उन का उतरि जाइगा झूठु गुमानु ।। (पृ. ७३४)

किआ उजू पाकु कीआ मुहु धोइआ किआ मसीति सिरु लाइआ ।।
जउ दिल महि कपटु निवाज गुजारहु
किआ हज काबै जाइआ ।। (पृ. १३५०)

टैलीफोन (telephone) द्वारा बातचीत करने, अथवा मेल जोल करने के लिए **किसी विशेष नम्बर का मिलना अनिवार्य है,** यदि वह नम्बर न मिले या रिसीवर (receiver) न उठाया जाये, तब दोनों में परस्पर –

बातचीत नहीं होती
संग या संगति नहीं होती
साझेदारी नहीं होती
आदान-प्रदान नहीं होता
वाणिज्य-व्यापार नहीं होता

ठीक इसी प्रकार यदि पाठ-पूजा, भजन बन्दगी करते हुए हमारा मन अथवा **ध्यान 'सावधान एकागर चीत' न हो, तब गुरबाणी के आन्तरिक गहरे अति सूक्ष्म भावनाओं से हम वचित रहते हैं तथा गुरबाणी की पारस-कला हम पर नहीं घटती ।**

तभी गुरबाणी में प्रेरणा तथा ताकीद भरा हुकुम है –

इक मनि एकु धिआईऐ मन की लाहि भराति ।। (पृ. ४७)
प्रभ की उसतति करहु संत मीत ।।
सावधान एकागर चीत ।। (पृ. २९५)
ए मन हरि जी धिआइ तू **इक मनि इक चिति भाइ ।।** (पृ. ६५३)
इक चिति इक मनि धिआइ सुआमी
लाइ प्रीति पिआरो ।। (पृ. ८४५)
नानक वाहु वाहु **जो मनि चिति करे**
तिसु जमकंकरु नेड़ि न आवै ।। (पृ. ५१५)
मन बच करम अराधे करता
तिसु नाही कदे सजाई हे ।। (पृ १०७१)
इक मन इकु अराधणा
गुरमति आपु गवाइ सुहेले । (वा. भा .गु. ५@६)

कुरबाणी तिना गुर सिखा
हुइ इक मनि गुर जाप जपदे । (वा. भा .गु. १२@२)

'ध्यान' अथवा एकाग्रता के लिए मन की दशा के विषय में गुरबाणी में यूँ ताड़ना की गयी है—

इहु मनूआ खिनु न टिकै बहु रंगी
दह दह दिसि चलि चलि हाढे ।। (पृ. १७१)

रहत अवर कछु अवर कमावत ।।
मनि नही प्रीति मुखहु गंढ लावत ।। (पृ. २६९)

जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ ।। (पृ. ४८८)

हमरै जीइ होरु मुखि होरु होत है
हम करमहीण कूड़िआरी ।। (पृ. ५२८)

कबहू जीअड़ा ऊभि चड़तु है कबहू जाइ पइआले ।।
लोभी जीअड़ा थिरु न रहतु है चारे कुंडा भाले ।। (पृ. ८७६)

वास्तव में इस विषय का सबसे विशेष तथा व्यवहारिक दृष्टान्त हमारा अपना 'मायिकी जीवन' ही है।

जीव अहम् के भ्रम-भुलाव द्वारा अपने स्रोत अकाल पुरुष को 'भूल कर' अथवा **बिछुड़ कर** कई जन्मों से मोह-माया की दल-दल में धँसा हुआ है अथवा द्वैत भाव में गलतान है।

हरि साजनु पुरखु विसारि कै लगी माइआ धोहु ।।
पुत्र कलत्र न सगि धना हरि अविनासी ओहु ।।
पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। (पृ. १३३)

माइआ मोहि नटि बाजी पाई ।।
मनमुख अंध रहे लपटाई ।। (पृ. २३०)

नाथ कछूअ न जानउ ।।
मनु माइआ कै हाथि बिकानउ ।।.....
इन पंचंन मेरो मनु जु बिगारिओ ।।
पलु पलु हरि जी ते अंतरु पारिओ ।। (पृ. ७१०)
अनिक जनम बीतीअन भरमाई ।।
घरि वासु न देवै दुतर माई ।।
दिनु रैनि अपना कीआ पाई ।।
किसु दोसु न दीजै किरतु भवाई ।। (पृ. ७४५)

जन्म-जन्मों से इस झूठी माया में हम इतने गलतान हुए पड़े हैं कि **हमारा जीवन ही माया का रूप हो गया है, इसीलिए हमारे –**

ख्याल
कल्पना
सोच
इच्छाएँ
आशाएँ
प्यार
भावना
निश्चय
श्रद्धा
संगति
आदान-प्रदान
कर्म
धर्म
साधना

अथवा **सम्पूर्ण जीवन को ही मोह माया का गहरा रंग चढ़ा हुआ है,**

जिस कारण हमारी –

चेतना

ध्यान

सुरति

वृत्ति

लिव

इस झूठी माया में अचेत, सहज स्वभाव, अनजाने ही ऐसी 'गहरी धँसी हुई है' कि इससे बाहर किसी दूसरी ओर हमारा ध्यान जाना असम्भव है।

हमारे अन्दर इस झूठी माया की –

चेतना

ख्याल

ध्यान

रंग

विश्वास

वृत्ति

लौ

पिछले अनेक जन्मों में, माया की –

संगति करने

ख्याल करने

याद करने

सिमरन करने

अभ्यास करने

से उत्पन्न तथा इतनी दृढ़ हो गयी है कि मायिकी चेतना (materialistic consciousness) **द्वारा माया ही हमारा जीवन-रूप बन चुकी है तथा इसी 'मायिकी जीवन'** में ही हम –

जन्म लेते

जीवन जीते

विचरण करते

कर्म करते

परिणाम भोगते

मरते

यम के वश पड़ते तथा

पुनः जन्म लेते हैं।

त्रउदसी तीनि ताप संसार ।।
आवत जात नरक अवतार ।। (पृ. २९९)

हरि बिसरिऐ किउ त्रिपतावै ना मनु रंजीऐ ।।
प्रभू छोडि अन लागै नरकि समंजीऐ ।। (पृ. ७०८)

जमि जमि मरै मरै फिरि जमै ।।
बहुतु सजाइ पइआ देसि लमै ।।
जिनि कीता तिसै न जाणी अंधा ता दुखु सहे पराणीआ ।। (पृ. १०२०)

माइआ मोहि बहु भरमिआ ।।
किरत रेख करि करमिआ ।। (पृ. ११९३)

यदि मनुष्य 'जीवन' को 'मायिकी रंग' चढ़ाने अथवा दृढ़ करने के लिए अनगिनत जन्मों में माया से संग अथवा मेल जोल के अथ्यास की आवश्यकता है, तब फिर इसके ठीक विपरीत **'मायिकी जीवन' को 'आत्मिक जीवन' में बदलने, ढालने अथवा दृढ़ करवाने के लिए**

इससे भी अधिक समय के लिए उच्च पवित्र आत्मिक साध संगत अथवा 'सत्संगत' करनी अत्यन्त आवश्यक तथा अनिवार्य है।

यह **'उल्टी खेल'** अथवा आत्मिक परिवर्तन अति लम्बी तथा कठिन 'प्रिम खेल' है, जो बख्शे हुए गुरमुख प्यारों महापुरुषों की लगातार संगति तथा सेवा-भाव से सरल तथा शीघ्र सम्भव हो सकती है।

खिनहूं किरपा साधू संग नानक हरि रंगु लाइओ ।। (पृ. ४०९)

पिछले लेख में बताया गया है कि जब किसी तुच्छ ख्याल या वस्तु की ओर हमारा ध्यान जाये तब मन के रुख या 'ध्यान' को तुरन्त उत्तम-श्रेष्ठ दिशा की ओर मोड़ना चाहिए। परन्तु माया के मलिन भवँर में विचरण करते हुए हमारा मन अति **निर्बल** हो चुका है, जिस कारण **मन के रूख को या ध्यान को तुच्छ ओर से उच्च दिशा में मोड़ना अति कठिन है।**

जब हम किसी कार्य की पूर्ति के लिए अपनी सारी शक्ति अथवा ताकत लगाकर **असमर्थ** हो जाते हैं, तब हम किसी अन्य **शक्तिमान की ओट अथवा आश्रय लेते हैं।** इसी प्रकार जब हमारा मन अपने वश से बाहर हो जाता है अथवा हम इसे काबू करने (control) में असमर्थ हो जाते हैं, तब हमें शक्तिमान **दिव्य व्यक्तित्व अथवा साध संगति की ओट व आश्रय लेने की आवश्यकता होती है।**

साध कै सगि न कतहूं धावै ।।
साधसगि असथिति मनु पावै ।। (पृ. २७१)

नानक तिन संतन सरणागती जिन मनु वसि कीना ।। (पृ. ८१५)

मनूआ चलै चलै बहु बहु बिधि
मिलि साधू वसगति करिआ ।। (पृ. १२९४)

मनु असाधु न साधीऐ
गुरमुखि सुख फलु साधि सधाइआ ।
साध संगति मिलि मन वसि आइआ । (वा. भा. गु. ४८२)

इसी कारण संगति से यह कहते सुना गया है कि जब तक साध संगति में रहते हैं, **मन टिका रहता है अथवा मायिकी विचार नहीं आते, परन्तु घर जाकर मन पर माया हावी हो जाती है तथा पुनः वही दशा ।**

इसी लिए गुरबाणी में हमें **'साध संगति' अथवा 'सत् संगति' करने के लिए ताकीदपूर्ण प्रेरणा की गयी है –**

सुणि साजन मेरे मीत पिआरे ।।
साधसगि खिन माहि उधारे ।। (पृ. १०३)

कोटि बिघन हिरे खिन माहि ।।
हरि हरि कथा साधसगि सुनाहि ।। (पृ. १९५)

जीति जनमु इहु रतनु अमोलकु
साधसंगति जपि इक खिना ।। (पृ. २१०)

महा पवित्र साध का संगु ।।
जिस भेटत लागै प्रभ रंगु ।। (पृ. ३९३)

नानक पतित पवित मिलि संगति
गुर सतिगुर पाछै छुकटी ।। (पृ. ५२८)

साधसगि मिलि नामु धिआवहु पूरन होवै घाला ।। (पृ. ६१७)

धरती में गहरी **'आकर्षण शक्ति'** (gravity) है, जिस कारण प्रत्येक वस्तु **धरती की ओर आकर्षित हो रही है।**

धरती के चारों ओर कई मीलों तक यह आकर्षण शक्ति (gravity) काम करती है। उससे उपर अनन्त अन्तरिक्ष (space) है जिसमें कोई आकर्षण शक्ति (gravity) नहीं है। इस अन्तरिक्ष में यदि कोई वस्तु पहुँच जाये, तब वहाँ ही हमेशा के लिए खड़ी रहती है।

इस अनन्त अन्तरिक्ष में, हमारी पृथ्वी की भाँति अन्य अनगिनत 'ग्रह' तथा 'उपग्रह' या सितारे हैं जिनके चारों ओर अलग-अलग श्रेणी की

आकर्षण शक्ति (gravity) होती है। जब कोई वस्तु अन्तरिक्ष में से निकल कर इन में से किसी भी ग्रह के वायुमंडल में प्रवेश हो जाती है, तब उस ग्रह की अपनी आकर्षण शक्ति (gravity) उसे अपनी ओर खींच लेती है।

उदाहरण के रूप में वैज्ञानिकों ने खोज की है कि 'चन्द्र ग्रह' में भी उसकी अपनी आकर्षण शक्ति है तथा जो वस्तु चन्द्रमा के वायु मंडल में **दाखिल हो जाये, तब वह आकर्षण शक्ति द्वारा चन्द्रमा के केन्द्र** (centre) **की ओर खिंची जाती है।**

ठीक इसी प्रकार हमारा 'मन' भी भ्रम-मयी मायिकी मंडल में सहज स्वभाव माया की शक्तिशाली आकर्षण शक्ति (gravity) द्वारा उसकी ओर खिंचा जा रहा है। जिस कारण अन्जाने ही सारी उम्र इस मायिकी मंडल में पलच पलच कर ख्वार होते हैं।

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। (पृ. १३३)

मंदा चितवत चितवत पचिआ
जिनि रचिआ तिनि दीना धाकु ।। (पृ. ८२५)

'अनुभवी ज्ञान' की **आत्मिक शक्ति** से ही हम इस मायिकी मंडल की आकर्षण शक्ति (gravity) को **बूझ-सीझ सकते हैं** तथा 'सत्संगत' अथवा साध संगति के सहारे ही **मायिकी आकर्षण शक्ति के दायरे में से निकल सकते हैं** तथा अपने वास्तविक 'निज घर', बेगमपुरे के सच्चे पवित्र अन्तरमुख आत्मिक देश अथवा **निरंकार के देश सचखण्ड की ओर हमारे मन का रुख मुड़ सकता है।**

यहाँ नुक्ते वाली बात यह है कि अपने **'ध्यान' को साध संगति की आत्मिक कला** (inspiration) **द्वारा एकाग्र करके मायिकी आकर्षण शक्ति** (gravity) **में से निकल सकते हैं, परन्तु जब भी हमारा मन साध संगति से बाहर होता है,** तब मायिकी आकर्षण शक्ति (gravity) हमारे

मन पर हावी हो जाती है तथा हम पुनः मायिकी 'अग्नि शोक सागर' में गोते खाने लग जाते हैं।

महा अभाग अभाग है जिन के तिन साधू धूरि न पीजै ।।
तिना तिसना जलत जलत नही बूझहि
डंडु धरम राइ का दीजै ।। (पृ. १३२५)

इसीलिए जिज्ञासुओं को यह कहते सुना है कि जब तक साध संगति के वातावरण (environment) में रहते हैं, **उतने समय तक मन एकाग्र हुआ रहता है** तथा 'ध्यान' नाम-बाणी-सेवा-सिमरन में लगा रहता है। परन्तु जब साध संगति से **दूर होते हैं,** तब तुरन्त 'ध्यान' माया की ओर अन्जाने, सहज स्वभाव ही **खिंचा जाता है** तथा हम बाणी-नाम-सिमरन के **रंग-रस से वचित हो जाते हैं।**

दूसरे शब्दों में **साध संगति की प्रेरणा द्वारा हमारे ध्यान की 'सुरति'** आत्मिक मडंल के दिव्य प्रेम स्वैपना के आकाश में **उड़ान भरती है।** इसके विपरीत साध संगति के आत्मिक वातावरण (aura) में से **निकलते ही** हमारे अन्तःकरण के तुच्छ स्वभाव तथा मलिन रुचियों अनुसार हमारा ध्यान पुनः **मायिकी मडंल की ओर खिंचा जाता है।**

इसलिए मन के ध्यान को सच्ची-पवित्र, जीवन्त साध संगति द्वारा नाम-बाणी सिमरन की ओर **मोड़ने के लिए गुरुबाणी में जोरदार प्रेरणा की गई है ।**

गुर कै सबदि मनु जीतिआ गति मुकति घरै महि पाइ ।।
हरि का नामु धिआईऐ सतसंगति मेलि मिलाइ ।। (पृ. २६)

सतसंगति लगि हरि धिआईऐ
हरि हरि चलै तेरै नालि ।। (पृ. २३४)

साधसगि हरि कै रगि गोबिंद सिमरण लागिआ ।। (पृ. ४५७)

सतसंगति गुर की हरि पिआरी ।।
जिन हरि हरि नामु मीठा मनि भाइआ ।। (पृ. ४९४)

साधसगि हरि हरि नामु चितारा ।। (पृ. ७१७)

मिलि साधू हरि नामु धिआईऐ ।। (पृ. ८०४)

मनि तनि प्रभु आराधीऐ मिलि साध समागै ।। (पृ. ८१७)

साध संगति सचु नाउ गुर गिआनु धिआनु सिखा समझाइआ ।
(वा. भा. गु. ६@१)

साध संगति करि साधना इक मनि इक धिआई । (वा. भा .गु ९@५)

यह 'मायिकी मंडल' अथवा 'आत्मिक मंडल' कोई **पृथक** देश, टापू, ग्रह नहीं है, यह तो **मानसिक भावों अथवा 'प्रेम स्वैपना' का, हमारे 'ध्यान' अथवा सुरति-वृति** (consciousness) **के उतार-चढ़ाव की सूक्ष्म अवस्था अथवा** खेल है – जिसे **कोई विरला गुरमुख ही जानता या पहचानता है –**

विरले कउ सोझी पई गुरमुखि मनु समझाइ ।। (पृ. ६२)

गुरमुखि खोटे खरे पछाणु ।।
गुरमुखि लागै सहज धिआनु ।। (पृ. ९४२)

साधिक सिध सगल मुनि लोचहि बिरले लागै धिआनु ।।
जिसहि क्रिपालु होइ मेरा सुआमी पूरन ता को कामु ।। (पृ. १२२६)

गुरसिख मनि परगासु है पिरम पिआला अजरु जरंदे ।
पारब्रहम पूरन ब्रहम ब्रहम बिबेकी धिआनु धरंदे । (वा.भा.गु. ६@१४)

दिब दिसटि गुर धिआनु धरि सिख विरला कोई ।
रतन पारखू होइ कै रतना अवलोई । (वा. भा .गु. ९@७)

'साध संगति' की ओट, आश्रय, प्रेरणा, मार्गदर्शन तथा सहायता

लेकर मन का ध्यान या 'सुरति-वृत्ति' की दिशा को आत्मिक मंडल की ओर मोड़ना जिज्ञासुओं का दैवीय उद्यम व क्रिया है ।

साध सगि मिलि नामु धिआवहु पूरन होवै घाला ।। (पृ. ६१७)

गुन गोबिंद नित गाईऐ ।।
साधसगि मिलि धिआईऐ ।। (पृ. ६२४)

साधसगि मिलि हरि गुण गाए
इहु जनमु पदारथु जीता रे ।। (पृ. ४०४)

साधू सगि भजहु गुपाल ।।
आन संजम किछु न सूझै इह जतन काटि कलि काल ।। (पृ.७५)

इससे आगे आत्मिक मंडल की **'अचरज कथा' अथवा 'आत्म खेल' निराली तथा विलक्षण है ।**

मछली जब 'मछुआरे' के जाल में **फँस जाती है** 'मछुआरा' उसे अपनी डोर द्वारा खींच लेता है । इसी प्रकार साध संगति में विचरण करते हुए किसी दैवीय सुहावने समय में हमारी **सुरति-वृत्ति इतनी चढ़ जाती है कि अनन्त 'प्रेम स्वैपना' के किंगरों अथवा नाम की 'पारस कला' को जा छूती है तथा नाम की 'प्रेम डोर' से 'बँध' जाती है । इस प्रकार हमारी सुरति नाम के 'प्रिम रस' में अलमस्त मतवाली हुई आत्म 'प्रेम डोरी' से खिँचती जाती है ।**

यह सब **'नाम' की अकल कला की 'पारस-छुह'** है तथा सतिगुरू की अपार कृपा बख्शिश नदर-करम द्वारा **प्रदान होती है,** जिस में जिज्ञासु का अपना कोई **जोर नहीं होता ।**

अलख अभेउ हरि रहिआ समाए ।।
उपाइ न किती पाइआ जाए ।।
किरपा करे ता सतिगुरु भेटै नदरी मेलि मिलावणिआ ।। (पृ. १२७)

जन नानक करमी पाईअनि हरि नामा भगति भंडार ।। (पृ. १६२)

करमि मिलै ता पाईऐ होर हिकमति हुकमु खुआरु ।। (पृ. ४६५)

इहु पिरम पिआला खसम का जै भावै तै देइ ।। (पृ. ९४७)

जिसु करमु होवे सो सतिगुरु पाए
अनदिनु लागै सहज धिआना ।। (पृ. ७९७)

गुरमुखजन की सूक्ष्म सुरति **'शबद धुन' की प्रीत डोर से इस प्रकार पक्की हो जाती है** कि कोई मायिकी शक्ति इस डोरी को तोड़ नहीं सकती ।

मू लालन सिउ प्रीति बनी ।। रहाउ ।।
तोरी न तूटै छोरी न छूटै ऐसी माधो खिंच तनी ।। (पृ. ८२७)

जब तक जिज्ञासु अपने मन के रुख को मायिकी मंडल की आकर्षण शक्ति (gravity) में से **निकाल कर** आत्म मंडल की ओर लगाने का **उद्यम या प्रयत्न करता है,** तब तक इस क्रिया को 'ध्यान' कहा जाता है ।

परन्तु जब हमारा **ध्यान या 'सुरति' सहज स्वभाव किसी अकथनीय रस की मस्ती में ईश्वरीय प्रीत डोर से आकर्षित हो रही होती है, तब यह 'सुरति' का प्रिम खेल बन जाता है । इस अलौकिक 'आत्म प्रिम खेल' में जिज्ञासु का कोई उद्यम या यत्न नहीं होता ।**

जिस प्रकार 'बीन' की **मधुर धुन** सुनकर 'साँप' मस्त हो कर थिरकने लगता है तथा **'धुन' का 'चेला' बन कर पीछे-पीछे रेंगता रहता है ।**

ठीक इसी प्रकार इस **'प्रिम खेल' में हमारी सुरति गुर शबद की 'अनहद धुन' सुन कर , अलमस्त मतवारी होकर, 'शबद धुन' की चेली बन कर आकर्षित होती जाती है इस 'शबद-सुरति' की**

ईश्वरीय प्रिम खेल को –

"सबदु गुरु सुरति धुनि चेला ।।" (पृ. ९४३)

कहा जाता है ।

ऐसे **'सहज ध्यान' की आत्मिक अवस्था की आश्चर्यजनक अकथ-कथा** को गुरबाणी में यूँ ब्यान किया गया है –

जो धुरि राखिअनु मेलि मिलाइ ।। कदे न विछुड़हि सबदि समाइ ।।
आपणी कला आपे ही जाणै ।।
नानक गुरमुखि नामु पछाणै ।। (पृ. १५९)

धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ
गुरमखि अकथ कहानी ।। (पृ. ८७९)

चरन कमल सिउ लागो धिआना साचै दरसि समाई संतहु ।।(पृ. ९१६)

अमर पदारथ ते किरतारथ
सहज धिआनि लिव लाईऐ ।। (पृ. ११२७)

माई री पेखि रही बिसमाद ।।

अनहद धुनी मेरा मनु मोहिओ अचरज ता के स्वाद ।। (पृ. १२२६)

सबद गुरू जाणीऐ गुरमुखि होइ सुरति धुन चेला ।

साध संगति सचखंड विचि प्रेम भगति परचै होइ मेला ।

गिआनु धिआनु सिमरण जुगति कूंज कुरम हंस वंस नवेला ।

(वा. भा .गु. ७@२०)

सबद सुरति परचाइकै नित नेह नवेला ।
वीह इकीह चड़ाउ चढ़ि सिख गुरु गुरु चेला ।
अपिऊ पीऐ अजरु जरै गुर सेव सुहेला ।(वा. भा .गु. १३@१४)

इक मनि इकु धिआइदे दूजे भाइ न जाइ फिरंदे।
सबद सुरति लिव अलख लखदे । (वा. भा .गु. १६@८)

सबदु सुरति लिव पिरम रसु
अकथ कहाणी कथी न जाए । (वा. भा .गु. १६@१०)

गिआन धिआन सिमरणि सदा गुरमुखि सबदि सुरति लिवलाई ।.....
गुरमुखि सुख फलु कीम न पाई । (वा. भा .गु. २५@१४)

सबद सुरत परमारथ परम पद
सबद सुरत सुख सहज निवास है । (क. भा .गु. ६२)

सबद बिबेक एक टेक जाकै मन बसै
मान गुर गयान सोई ब्रहम गिआनी है ।
द्रिशटि दरस अरु सबद सुरति मिलि
प्रेमी प्रिअ प्रेम उनमन उन मानी है ।
सहज समाधि साध संग इक रंग जोई
सोई गुरमुख निरमल निरबानी है । (क. भा .गु. ३२७)